शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 9
Issue 1
15 January, 2018

महात्मा बुद्ध का सामाजिक चिन्तन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

बीज शब्द :

समाज, तर्क, बुद्धि, धर्म, सामाजिक चिन्तन।

महात्मा बुद्ध को परंपरा से 'तथागत' के नाम से जाना जाता रहा है। 'तथागत' का अर्थ जिसने संसार में किसी तथ्य को लाने का कार्य किया है। जिस कर्म या चिंतन के द्वारा किसी तथ्य को जगत में लाया गया। कभी मनुष्य कल्पनाओं, धारणाओं या विश्वासों के बल पर किसी विचार तक पहुंचता था। सत्य क्या है यह एक समस्या बनकर रह जाती थी। खासकर साधारण मानव के लिए। तर्क को महत्त्व नहीं दिया जाता था आस्था एवं श्रद्धा का प्रभाव अधिक था। महात्मा बुद्ध इसी अवधारणा का प्रतिकार करते हैं। धारणा यदि पहले ही निर्धारित कर ली जाय तो तथ्य का महत्त्व नहीं रह जाता। यहीं से धारणा भी संदेह के घेरे में आने लगती है, जिसे दूर करने के लिए चिंतन करते हैं। चिंतन के परिणामस्वरूप इन्होंने अंतर्मुखी भाव का सृजन किया। आईने के पास यदि जाना है तो अंजान बनकर जाओ, शून्य होकर जाओ। तन से नहीं परन्तु मन से अवश्य निर्वस्त्र होकर जाओ। इसके बाद जो दिखाई दे वही सत्य है। यदि शास्त्र लेकर, धारणा लेकर सत्य तक जाना है तो बनी बनायी परम्पराएँ मिलेंगी जो उलझन पैदा करती रहेंगी। इसके लिए अंत:करण को जगाना होगा। अंतर्मुखी होना पड़ेगा। व्यक्ति के मूल में यही एक बहुत बड़ी समस्या है जो विशाल मानव समाज को सोचने पर विवश करता है। इनके चिंतन से विविधता और विषमता दोनों के लिए प्रामाणिक तथ्य मिलते हैं। हालांकि विविधता स्वाभाविक हो सकती है लेकिन विषमता नैसर्गिक नहीं हो सकती। इसी विषमता और सामाजिक, धार्मिक विद्रूपता ने सिद्धार्थ को महात्मा बुद्ध बनने को विवश किया। इस शोध आलेख में उक्त विचारों के आलोक में महात्मा बुद्ध के सामाजिक चिंतन के विवेचन की कोशिश की गयी है।

*****

राजीव कुमार दास
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग
Email : rajeevgo999@gmail.com

महात्मा बुद्ध का सामाजिक चिन्तन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

शोध उद्देश्य :

मानव कल्याण हेतु भगवान बुद्ध का संदेश क्या है? समाज के लिए समानता एवं भाईचारा क्यों आवश्यक है? सामाजिक विषमता दूरे करने का उपाय क्या है? ऐसे संवेदनशील प्रश्नों को केन्द्र में रखकर भगवान बुद्ध का चिंतन समझने का प्रयास है। ताकि शोध आलेख मानवीय रिश्तों को प्रगाढ़ करने में एक सक्रिय भूमिका निभा सके।

शोध प्रविधि :

प्रस्तावित शोध आलेख तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक प्रकृति का है। तथ्यों के विश्लेषण क्रम के दरम्यान, ध्यान रखा गया है कि अध्ययन का विश्लेषण वैज्ञानिक एवं कार्यकारण संबंधों पर आधारित हो। विभिन्न पुस्तकों, पुस्तकालयों के साथ-साथ अंतरजाल में उपलब्ध सामग्रियों के संचयन, वर्गीकरण का सहारा लिया गया है। प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का भी सहयोग आवश्यकतानुसार लिया गया है।

भूमिका :

यदि विचार किया जाय कि चिंतन और सृजन क्या है ? तो दोनों हमें एक ही सिक्के के दो पहलू लगेंगे। सर्वविदित है किसी भी मानव का विकास उसके चिन्तन पर केन्द्रित होता है। इसके द्वारा वह अपने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष समस्याओं का समाधान करता है। यह एक ऐसी बौद्धिक योग्यता या दक्षता है जिसका प्रयोग वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में करता है। इसमें मुख्य रूप से कल्पना, एकाग्रता, जागरूकता, स्मृति, समझ और अवलोकन का उपयोग होता है। हाँ! यह बात और है कि मानव की चिन्तन क्षमता भिन्न-भिन्न होती है, इसमें कोई नये समाज के सृजन के लिए विवश हो जाता है। सवाल फिर उठता है यह सृजन क्या है? सृजन भी एक मानसिक प्रक्रिया है जिसमें नये विचार, उपाय या कांसेप्ट का उद्‌भव होता है। जैसा कि परंपरा से प्रचलित है अपने जीवनकाल में सिद्धार्थ ने बचपना, युवावस्था, वृद्धावस्था एवं किसी शव को जाते हुए देखा और सोचा सबको इसी दौर से गुजरना होता है। उन्हें लगा जब यह परिस्थिति एक निश्चित अवधि के बाद सारे लोगों के लिए हो सकती है फिर इतनी जड़ता, रूढ़िवाद, अंधविश्वास, विषमता इनमें क्यों? यह किसकी देन है?

गौतम बुद्ध दुनिया के पहले ऐसे चिंतक हैं जिन्होंने धर्म को बुद्धि, विवेक और वैज्ञानिकता की कसौटी पर परखकर मनुष्य के अत:स्तल को झंकृत किया। साधारण समझ रखने वाले मानव से लेकर असाधारण सोच रखने वाले मानव तक को धर्म, समाज, दुनिया आदि पर सोचने को विवश कर दिया। मानव समाज को एक सूत्र में पिरोने के लिए जिन-जिन सामाजिक बुराइयों का सामना करना पड़ता है, सबका सामना करना, पदार्फाश करना इनके जीवन का लक्ष्य था। परम्परा से प्रेम और करुणा, ज्ञान और उदारता, विवेक और परदु:ख कातरता की जो उदात्त भावनाएँ रहीं वह किसी खास लोगों के लिए अधिकृत थे। मानव मानों अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गए थे। धर्म की ओट में छुपकर विलास और भोग में रहना कर्त्तव्य नहीं है। अपनी संतुष्टि के लिए दूसरे का अधिकार हनन करना कर्त्तव्य नहीं है। समाज में वर्चस्व स्थापित करने के लिए किसी का अस्तित्व मिटा देना, षड़यंत्र बुनते रहना कर्तव्य नहीं है। ऐसी अनेक कुप्रथाओं के खिलाफ लोगों की चेतना को जगाने का काम किया, सबकी आखें खोलने का काम किया, मन, वचन और कर्म से समानता का भाव जगाने का कार्य किया तथा विषमता उत्पन्न करने वाले अवगुणों से सर्तक रहने का संदेश दिया।

विषय विश्लेषण :

मनुष्य की प्रवृतियों में, विवेकहीन कर्मों से जब विकृतियां आने लगती हैं, तब समाज को महात्मा बुद्ध जैसा चिंतक मिलता है। मनुष्य को लेकर समाज की जो संरचना बनी, अनेक स्वार्थपरक गुणों को लेकर बनी। यही कारण है किसी को सम्पूर्ण मानव का दर्जा समाज ने दे दिया तो किसी को मानव होकर भी पशुतुल्य जीवन व्यतीत करना पड़ा। किसी को दलित, वंचित, शोषित रहना पड़ा क्योंकि ये दमन के शिकार हुए तो किसी को दलित, शोषक कहलाने में गर्व महसूस हुआ। इसी गहरी खाई को पाटने का कार्य इन्होंने किया। चिरकाल तक जिस समाज को बुद्धू बनाकर एक खास वर्ग को मूर्ख बनाकर शोषित किया जा रहा था उसकी आँखे खोलकर सच्चाई से अवगत करने का सफल कार्य किया। इसी कारण इन्हें बुद्धि का प्रतीक के रूप में प्रसिद्धि मिली। क्योंकि वैज्ञानिकता को केन्द्र में रखकर धर्म को परखने समझने का काम किया।

इसी कारण स्वामी विवेकानंद कहते हैं, ''बुद्ध ही एक व्यक्ति थे, जो पूर्णतया तथा यथार्थ में निष्काम कहे जा सकते हैं ऐसे अन्य कई महापुरुष थे, जो अपने को ईश्वर का अवतार कहते थे और विश्वास दिलाते थे कि जो उनमें श्रद्धा रखेंगे वे स्वर्ग प्राप्त कर सकेंगे। पर बुद्ध के अधरों पर अन्तिम क्षण तक ये ही शब्द थे, 'अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्न से होगी। अन्य कोई इसमें तुम्हारा सहायक नहीं हो सकता। स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त

करो।''[1] यह विचारधारा जीवन की दिशा निर्धारित करने की एक तरह से प्रथम सीढ़ी है, प्रथम प्रयास है। स्वावलंबी बनने का प्रथम द्वार यदि कोई खोलने का काम किया तो महात्मा बुद्ध ने किया। व्यक्ति की ऊँचाई उतनी होगी, जितना वह स्वावलंबी बनेगा। और जितना स्वावलंबी बनेगा, उतनी ही उसकी बुद्धि विकसित होगी, वह सकारात्मक भाव लेकर सृजनशील बन सकेगा। आत्मविश्वास की चरम सीमा तक व्यक्ति पहुँच सकता है जब वह अपना प्रेरक खुद बने, अपना पथ-प्रदर्शक खुद बने। तब ही वह जीवन के यथार्थ को, मर्म को पहचान पाएगा और हमेशा खुद को गतिशील बनाए रख सकेगा। बिना किसी कामना की इच्छा के मनुष्य जिसका सृजन करता है वह अत्यंत मूल्यवान हो जाता है।

''बौद्ध-ग्रंथ 'विनयपिटक' में अनेक स्थानों पर बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहा करते थे; किसी बात को केवल इसलिए नहीं मानो कि यह धर्म ग्रंथों में लिखी है, परम्परा से चली आ रही है या फिर मैं (बुद्ध) ही कह रहा हूँ। पहले उसे अपने तर्क की कसौटी पर कसो, यदि वह सत्य की कसौटी पर खरी उतरती है, तभी उसे मानो, अन्यथा नहीं। बुद्ध की इस छोटी सी उक्ति ने वर्ण व्यवस्था और अन्य ईश्वरीय कहे जाने वाले विधानों के खिलाफ बहुत बड़ा काम किया है।''[2] इतना खरा और सटीक विचार शायद किसी धर्म में या महापुरुष के विचार में मिलता है। ऐसे भी वह धर्म ही क्या जो बेबाक राय न दे सके। स्पष्ट झलकता है कि कर्मकाण्ड, बाह्यांडबर, अंधविश्वास आदि का कहीं स्थान नहीं है। कोई भी विचारधारा चाहे धर्म का ही क्यूँ न हो बुद्धि से परखा जाना चाहिए। लेकिन बुद्धि के लिए विवेक की आवश्यकता होती है। विवेक जितना सही रहेगा, जितना जागृत होगा, उतना ही सही को सही और गलत को गलत मान सकता है। सत्य की परख उतनी ही सही से की जा सकती है, धर्म की वास्तविकता से अवगत कराया जा सकता है। प्राचीन काल में स्वार्थ हित के लिए ईश्वरीय विधान को आगे कर दिया जाता था। बौद्ध धर्म की अदालत में इसे खारिज कर दिया गया। परम्परा क्या महत्त्व रखता है आधुनिकता के लिए, महापुरुष क्या महत्त्व रखता है मानवता के लिए, विचार क्या महत्त्व रखता है सदाचार के लिए या धर्म का क्या महत्त्व है धार्मिकों के लिए इसे तार्किकता पूर्ण तरीके से स्पष्ट किया गया। सही हो तो स्वीकार करो अन्यथा बिलकुल नहीं। ऐसा स्पष्ट साहस केवल बौद्ध धर्म में ही मिलता है।

परम्परा रही है कि समूह यदि किसी विचार को स्वीकार करे तो हमें भी स्वीकार कर लेना चाहिए। समूह यदि सही नहीं मान रहा है फिर भी स्वीकार कर रहा है, हमें भी स्वीकार करना चाहिए या करना होगा। ऐसी विचारधारा समाजोत्थान हेतु महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए। पूरी भीड़ किस विचारधारा का पोषक है इसे महत्त्व देने के बजाय तर्क किस विचारधारा को महत्त्व देता है इसे महत्त्व बौद्ध धर्म ने दिया। तब ही तो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की स्थापना के लिए भगवान बुद्ध ने युवा अवस्था में ही गृह त्याग दिया था। भारत जैसे लोकतांत्रिक गणराज्य के लिए ये अंधविश्वास, कर्मकाण्ड और हिंसा का विरोध होना तो स्वाभाविक है। इसीलिए तो राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर कहते हैं- ''जाति प्रथा को चुनौती देकर बुद्ध ने इस देश में एक महान आन्दोलन आरंभ किया जो प्रायः गाँधी तक चलता आया है और आज भी चल रहा है। उन्होंने मनुष्य की मर्यादा को यह कहकर उपर उठाया कि कोई मनुष्य केवल ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने से पूज्य नहीं हो जाता, न कोई शूद्र होने से पतित हो जाता है। उच्चता और नीचता जन्म पर नहीं, कर्म पर अवलम्बित है।''[3] इसी कर्म आधारित समाज ने राष्ट्र को कभी शिखर पर पहुंचाया था, दुनिया का सिरमौर बनाया था। कुछ लोग यह भुनाने में लग जाते हैं, यह ब्राह्मणों की देन है, सवर्णों की देन है। इतिहास देखकर भी, धर्मशास्त्र देखकर भी लोग समझ नहीं पाते या उनकी हठधर्मी मानसिकता सोचने को तैयार नहीं होती है। बहुत बड़ी विडंबना है। भारत की गौरव गाथा लिखने में तो हर वर्ग की सक्रिय भूमिका रही। इसीलिए सबका उत्थान से ही राष्ट्रोन्नति संभव है। भारत में जितने भी समाजसुधारक आन्दोलन हुए सबने स्वीकार किया जब तक वंचितों, दलितों का उत्थान नहीं होगा देशोत्थान नहीं होगा। देश का अधिसंख्य वर्ग इसका शिकार है। चंद लोगों की विकसित जमात से देश नहीं चलता। एक अधिसंख्य समूह अधिक महत्त्व रखता है। हर विकसित राष्ट्र की यही गाथा है।

बौद्ध धर्म मानव को केन्द्र में रखकर जीवन का विस्तार करना सिखलाता है जबकि अन्य धर्म आस्था एवं श्रद्धा को केन्द्र में रखकर जीवन की दिशा निर्धारित करता है। जीवन में सर्वोच्च स्थान ईश्वर की जगह शील एवं सदाचार को देना चाहता है। खुद से जितना स्नेह आदर है उतना ही दूसरों से करो। यह संदेश बौद्ध-धर्म को और लोकतांत्रिक बना दिया। जब लोकतंत्र की बात आती है समाज के हर तबके के चेहरे पर एक आभा आ जाती

1. विवेकानन्द, स्वामी, भगवान बुद्ध तथा उनका संदेश, श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द साहित्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर-440012, दशम पुनर्मुद्रण, पृ0 10
2. हंस (सं०), अगस्त 2000, बौद्ध धर्म तथा वर्ण व्यवस्था, डॉ0 तुलसीराम, पृ0 58
3. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, तीसरा संस्करण, 2010 पुनरावृत्तिः 2013, 2014, 2015, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 146

है। खासकर उन लोगों पर अधिक जो ईर्ष्या, क्रोद्ध, हिंसा, उन्माद, व्यभिचार आदि कुत्सित प्रवृतियों से अपने जीवन को मुक्त रखना चाहते हों। प्राचीन काल से आडंबर के पोषक चले आ रहे हैं आज भी है। हम क्या हैं, क्यूँ कुछ लोगों को दलित, वंचित, पीड़ित, उत्पीड़ित कहकर पुकारा जा रहा है शोषित किया जा रहा है इससे प्रत्यक्ष रूप से अवगत होने का सौभाग्य बौद्ध-धर्म द्वारा दिए गए संदेश से प्राप्त हो रहा है। इसी लोकतांत्रिक पद्धति ने लोगों के अंदर नवजागरण का बीज बोया।

महात्मा बुद्ध को सनातन धर्म और भारतीय साहित्य ने ईश्वर का अवतार घोषित किया। ब्राह्मणवादी या मनुवादी विचारधारा के पोषक सामाजिक व्यवस्था को अव्यवस्थित तरीके से बनाया। इससे अपना लाभ होता था। यदि ईश्वर के अवतार की नयी व्याख्या की जाय तब तो अधिक प्रासंगिक भगवान बुद्ध का होना चाहिए। भगवान बुद्ध कहते हैं :

न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणों
कम्मना वसलो होति कम्मना होति ब्राह्मणों[4]

तात्पर्य है कोई व्यक्ति न जन्म से वैश्य होता है न जन्म से ब्राह्मण होता है। कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ब्राह्मण होता है। ये सब कर्म से निर्धारित होता है। मनुष्य जैसा कर्म करता जाएगा वैसा ही वर्ण निर्धारित होता जाएगा। जन्म से वर्ण का निर्धारण सही नहीं माना गया है। आज के वैज्ञानिक युग में यह और अधिक प्रासंगिक बन जाता है। ऐसे उदाहरण धर्मशास्त्रों में भरे पड़े हैं। 'सत्यार्थ प्रकाश' में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने तो स्पष्ट कहा है- ''मातंग ऋषि चांडाल कुल से ब्राह्मण हो गये, अब भी जो उत्तम विद्यास्वभाव वाला होगा वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसा ही आगे रहेगा।''[5] इसी तरह प्रसंग में आधुनिक कालीन विद्वान आलोचक एवं भारतीय संस्कृति के उद्गाता बाबू गुलाबराय कहते हैं- ''विश्वामित्र जी क्षत्रिय से ब्राह्मण बने थे और उन्होंने वशिष्ठजी से प्रतिस्पर्द्धा भी की। विदेहराज राजर्षि जनक ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ समझे जाते थे और ब्राह्मण लोग भी आध्यात्मिक समस्याएँ उनके सामने रखते थे। तुलाधर वैश्य के यहाँ भी एक ब्राह्मण शिक्षा लेने गया था।''[6] ऐसे-ऐसे अनेक उदाहरण हमारे इतिहास में भरे पड़े हैं। विद्वता की पूछ हमारे समाज की परंपरा रही है। कर्म को महत्त्व देना भारत की कहानी रही है। उत्तम विद्या, उत्तम आचरण, उत्तम कर्म को भारत ने सदा अंगीकार किया है। क्यूँ न वह शूद्र ही रहा हो। यह बात और है कि देश में कुत्सित विचारधारा के पोषकों की लंबी जमात है। उसी में से किसी ने मुख से, हाथ से, पेट से, पैर से मनुष्य की उत्पत्ति की कोरी कल्पना कर बैठी है। ऐसी कल्पना समाज में रूढ़ भी हो गयी। इसके पोषक भी हमेशा जन्म लेते रहते हैं लेकिन निराधार समझकर कोई महत्त्व भी नहीं देता है। महात्मा बुद्ध हमेशा इस बात पर जोर देते आए हैं- ''किसी तथ्य को इसलिए मत मानो कि वह परम्परा से चला आ रहा है अथवा यह प्राचीन काल में कहा गया है अथवा इसका उपदेश देने वाला महान गुरु या तपस्वी है अथवा किसी वाद के लिए इसे स्वीकार करना आवश्यक है। इन कारणों में से किसी भी तथ्य को मत ग्रहण करो अपितु इस कारण से ग्रहण करो कि वे धर्म शुभ प्रद है तथा ग्रहण करने से उनका फल सुखद एवं हितप्रद होगा।''[7] महात्मा बुद्ध हमेशा किसी वस्तु या तथ्य को स्वयं जांच परख लेने के पक्ष में रहते थे आत्मसंतुष्टि के पक्षधर थे। हृदय के विस्तार को जितना महत्त्व देते थे, बौद्धिक विस्तार को उतना ही महत्त्व देते थे। इसीलिए कहा जाता है सनातन धर्म के जितने भी अवतार हुए हैं सबमें आस्था, श्रद्धा का महत्त्व अधिक रहा है। महात्मा बुद्ध का ही अवतार ऐसा रहा है जिसमें बौद्धिकता अधिक प्रतिष्ठित हुई है। धार्मिक कट्टरता, पाखंड, व्यभिचार, रुढ़िवाद आदि के पोषक धार्मिक व्यापार में मंदा होने लगे उसका सारा श्रेय बौद्ध-धर्म को जाता है। इसकी वैज्ञानिकता ने ही समाज के उपेक्षितों की दृष्टि खोली।

सदियों से चली आ रही वर्ण व्यवस्था जैसी अनेक सामाजिक विषमताओं को बदलना भगवान बुद्ध का उद्देश्य रहा है। सामाजिक समानता के साथ समरसता तब ही संभव है जब कर्मगत सामाजिक विभाजन हो। मानवतावादी धर्म का पोषक हो। प्रत्येक को हर दृष्टि से पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो, जातिगत भेदभाव से मुक्त हो उसकी प्रतिभा, योग्यता, क्षमता को आंका जाय विकसित किया जाय। इसी कारण इन्हें धर्मोपदेशक कम समाजसुधारक अधिक कहा जाता है। इसी कारण आज बुद्ध द्वारा प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था की अवधारणा लोक प्रचलित और सर्वमान्य बनती जा रही है। समाज का हर वर्ग जाति, धर्म को कर्म से जोड़ना चाहता है। इसी में स्वतंत्रता का अनुभव भी करता है। हालांकि कट्टरता के पोषक आज भी है। यह कितना शर्मनाक है कि ब्रह्मज्ञान की जानकारी रखते हुए भी ब्राह्मण के अतिरिक्त क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए ब्राह्मण कहलाने का प्रावधान है, जन्म की बाध्यता

4. सांस्कृत्यायन, राहुल (सं0), विनयपिटक, सरस्वती, दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, महर्षि दयानंद भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-02, पृ0 85
5. राय, बाबू गुलाब, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, ज्ञान गंगा, दिल्ली, पृ0 138
6. उपाध्याय, आचार्य बलदेव, बौद्ध दर्शन मीमांसा, वाराणसी, 1978, पृ0 39-40

है। लेकिन इसके दोषी केवल एक ही वर्ण नहीं है, सभी दोषी हैं। साधक ही पुरोहित है। मोक्ष की कामना देवताओं को केन्द्र में रखकर न किया जाय अपितु खुद को ही इतना साध लिया जाय कि हर मानव बुद्ध हो जाय। प्रखर बौद्धिक व्यक्तित्त्व का धनी वही हो सकता है जिसमें समाज को निष्पक्ष रूप से देखने समझने की समझ हो। जिसमें समाज को क्रांतिकारी तरीके से समानता के आधार पर स्थापित करने की क्षमता हो। बौद्धिक व्यक्तित्त्व का धनी वही हो सकता है जिसकी बुद्धि में वैज्ञानिकता भी हो तार्किकता भी। उसमें आध्यात्मिकता का भी गहरा अनुभव हो अन्यथा बौद्धिक विवेक का मालिक नहीं हो सकता है।

भारतीय साहित्य में अवतारवाद को समझा जाय, गहन अध्ययन किया जाय तो पता चलता है, भगवान बुद्ध ऐसे पहले अवतार हैं, जिन्होंने सत्य की खोज अकेले शुरू की। जीवन को गहन मौन से जोड़ा। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें जितना मनुष्य जुड़ेगा उतना ही उसमें तार्किक प्रश्नों का प्रस्फुटन होगा। प्रश्नों का जबाव हृदय से तार्किक तरीके से निकलेगा भी। त्याग की प्रक्रिया तब ही सफल होती है जब मोह पीड़ा और अहंकार व्यक्ति के जीवन से दूर हो जाते हैं। बुद्ध का चिंतन यही बतलाता है। जब मन से इसका विसर्जन न हो आप त्याग की पूर्णता तक नहीं आ सकते। यदि इस दौरान मन को सांत्वना देने लगे तो संभव ही नहीं है कि लक्ष्य को पा लेंगे। संकल्प, संघर्ष और तपस्या के बिना यह पूरा नहीं हो सकता। प्राचीन भारतीय साहित्य में पाशविक मनोवृतियाँ मिलने का कारण इन्हीं कार्यों की असफलता रही है। मानव को दीनहीन, पशुतुल्य बनाकर रखा गया उसका भी यही कारण है।

मनुष्य की प्रतिष्ठा तब ही होती है जब वह विवेकशील होता है। उसके पास ज्ञान हो और ज्ञान के प्रकाश से घर, परिवार समाज आलोकित हो। मानव का जीवन जब समस्त जीवों के कल्याण के लिए सार्थक होने लगे तब वह मनुष्यत्व को धारण करने लगता है। यही चिंतन की प्रकृति, सृष्टि, जन्म, मरण, बुढ़ापा आदि को समझने के लिए बल देने लगता है। दुनिया क्या है, सृष्टि कैसे बनी, किसने बनाया, जीव क्या है, मनुष्य क्या है, इसके उद्देश्य क्या है, आदि के संबंध में सोचने समझने की जिज्ञासा उत्पन्न होने लगती है। तर्क की क्षमता बढ़ती है। लेकिन ऐसे विचारों के लिए सबसे आवश्यक है- बुद्धि और बुद्धि को जिस धर्म ने आस्था और श्रद्धा से भी ऊपर स्थान दिया है वह धर्म है- बौद्ध धर्म। वैसे तो बौद्ध धर्म के संस्थापक भगवान बुद्ध कभी भी धर्म को उस रूप में देखने के पक्षधर नहीं रहे जिससे अंधविश्वास को बल मिले। धर्मशास्त्रों को पहले कभी बुद्धि व तर्क पर नहीं बल्कि श्रद्धा और विश्वास पर टिकाए रखने की बात होती रही। आस्था व श्रद्धा की दुहाई देकर मनुष्य-मनुष्य को पाटने का काम किया जाता था। इससे सामाजिक विषमता को बढ़ने का अवसर मिलने लगा। विकृतियों का जन्म होना शुरू हो गया। ऊँच-नीच, छूत-अछूत, वर्ण-वर्ग, जाति आदि को मनुष्य के उपर समझा जाने लगा। स्वार्थलोलुपता के कारण धार्मिक संदेश को कुत्सित करने का कार्य किया जाने लगा। परिणाम- धार्मिक अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, रुढ़िवाद, जड़ता आदि संकीर्णताओं को पनपने का अवसर मिल गया। ऐसी विषमताओं को तार्किक ढंग से सुलझाने के लिए जिस महापुरुष ने पृथ्वी पर कदम रखा उनका नाम था- सिद्धार्थ। आगे चलकर बुद्धि का धर्म प्रतिष्ठित करने वाले, 'महात्मा बुद्ध' के नाम से विख्यात हुए। समाज की बुराइयों पर प्रहार करके मानवता का संदेश देना प्रारंभ किया। धर्म क्या है, धर्म का उद्देश्य क्या है, वर्ण-व्यवस्था क्या है एवं इसका उद्देश्य क्या है, आदि को सरल एवं सार्थक तरीके से जन-कल्याण हेतु व्याख्या की।

शोध निष्कर्ष :

अत: समाज में भाईचारा स्थापित करने के लिए जाति, वर्ण आदि तोड़कर समानता लाने के लिए महात्मा बुद्ध ने धर्म को मानव-धर्म के रूप में स्थापित कर दिया। इसके लिए मध्यम मार्ग पर बल दिया। आत्महनन और आत्मपीड़न की जगह आत्ममनन को अपनाने का संदेश दिया। तापसिक कठोरता के स्थान पर मानसिक आश्वस्तता को समझाने का प्रयास किया। धर्म को नैतिकता के साथ एवं नैतिकता को हृदय में उठनेवाले प्रेम और करुणा के रस से जोड़ दिया। वर्चस्ववादी समाज की जगह बंधुत्ववादी समाज की स्थापना की। यही काल की माँग थी और इसकी आज तो सतत् आवश्यकता है ही, एक विकसित विवेकशील प्रतिभावान राष्ट्र बनाने के लिए।

◆◆◆